नई शिक्षा नीति और स्कूलों की बोर्ड परीक्षाएँ

अरविन्द सरदाना

नई शिक्षा नीति के प्रारूप (ड्राफ्ट नेशनल एजुकेशन पॉलिसी - डीएनईपी) का एक महत्वपूर्ण सुझाव है कि स्कूल से निकलने वाले बच्चों की बोर्ड परीक्षा के पैटर्न में बदलाव किया जाए। अगर इस सुझाव को लागू किया जाता है तो यह शिक्षा व्यवस्था व परीक्षा प्रणाली में एक बड़े सुधार का प्रयास होगा। सुझाव के अनुसार बच्चों को परीक्षाओं की तरफ धकेलना और भय पैदा करना उद्देश्य नहीं होना चाहिए। इसकी बजाय उनके सीखने का आकलन करने के सिद्धान्त को अपनाया जाना चाहिए।

लेकिन यह बहुत मुश्किल लगता है कि डीएनईपी के पाठ्यचर्या और शिक्षण से सम्बन्धित प्रगतिशील विचारों को लागू किया जाएगा। ऐसा क्यों? और इससे पहले सुझाए गए इसी तरह के विचारों का क्या हश्र हुआ है?

कोचिंग सेंटर, जो आज के समय में माध्यमिक शिक्षा और इससे आगे की शिक्षा की अधिकांश विषयवस्तु

और कक्षा की प्रक्रियाओं को तय करते हैं, सीखने को बिलकुल भी प्रोत्साहित नहीं करते। 2005 में आई राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन.सी.एफ.) ने भी इसी तरह का नज़रिया व्यक्त किया था। यह बहुत स्पष्ट है कि समाज और बाज़ार के दबाव बहुत अधिक हैं जो बड़ी आक्रामकता के साथ विद्यार्थियों और उनके पालकों को ज़्यादा-से-ज़्यादा नम्बर लाने की तरफ, यानी ज़्यादा-से-ज़्यादा कोचिंग की तरफ, धकेलते हैं। ये कोचिंग सेंटर इस तरह की अपेक्षाएँ और आशाएँ जगा देते हैं कि उनकी मदद से विद्यार्थी किसी जाने-माने कॉलेज जैसे भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आई.आई.टी.) और ऐसी ही अन्य प्रतिष्ठित संस्थाओं में दाखिले की लकीर को पार कर सकते हैं। पतन की तरफ जाती बाकी संस्थाओं और बढ़ती बेरोज़गारी के बीच एक सुरक्षित भविष्य पाने की यह धुँधली-सी आस ही बोर्ड परीक्षाओं में अपने बच्चों से 90 प्रतिशत से ज़्यादा नम्बर लाने की पालकों की आकांक्षाओं को बढ़ाती रहती है।

इस प्रक्रिया में कोचिंग उद्योग हज़ारों करोड़ रुपए बना लेता है, और इसीलिए वर्तमान परीक्षा प्रणाली को जारी रखने में उसका बहुत गहरा स्वार्थ निहित है। अभी कुछ साल पहले ग्यारहवीं और बारहवीं के बच्चे बहुत खुलकर यह बताते थे कि वे एक डमी (दिखावटी) हाईस्कूल में पढ़ाई कर रहे हैं लेकिन नियमित रूप से अमुक

कोचिंग संस्थान से कोचिंग ले रहे हैं। इन दिनों तो कई कोचिंग संस्थान स्कूलों को अपने हाथ में लेने के बाद खुद ही इन हाईस्कूलों को चला रहे हैं। कोचिंग की संस्कृति स्कूलों की प्रमुख संस्कृति बन गई है और इस तथ्य को बड़े गर्व के साथ बताया जाता है।

नई परीक्षानीति में परीक्षा

डीएनईपी में बोर्ड परीक्षाओं के स्वरूप में बदलाव करके इस स्थिति को बदलने की कोशिश दिखाई देती है। इसके मुताबिक बोर्ड परीक्षाएँ विद्यार्थी की मूलभूत योग्यताओं, विश्लेषण क्षमता व उच्च स्तरीय कौशलों पर ध्यान केन्द्रित करेंगी। यह सही तरीका प्रतीत होता है। *एकलव्य* में हमने मध्य प्रदेश सरकार के साथ चलाए गए अपने सहयोग-आधारित कार्यक्रमों में बरसों तक इस पद्धति पर चलने का प्रयास किया। ये कार्यक्रम विज्ञान, सामाजिक विज्ञान और प्राथमिक शिक्षा के लिए थे। आकलन की व्यवस्था में बदलाव के सकारात्मक परिणाम तभी मिलते हैं जब इसके साथ दीर्घकालिक शिक्षक-प्रशिक्षण भी चले और शिक्षा को लेकर नज़रिए के ऊपर शिक्षकों के साथ संवाद किया जाए। कक्षा में होने वाली प्रक्रियाओं में बदलाव ज़रूर आता है अगर शिक्षकों के नज़रिए, पाठ्यपुस्तकों से की जाने वाली अपेक्षाओं और बच्चों के आकलन के तरीके के बीच तालमेल और सहयोग हो। अक्सर यह हुआ है

कि पाठ्यपुस्तकें तो बदली गई हैं लेकिन शिक्षकों के साथ तालमेल के अभाव में कक्षा की प्रक्रियाएँ और गतिविधियाँ नहीं बदलतीं या नई अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं ढलतीं।

डीएनईपी में कहा गया है,

'आकलन के स्वरूप को बदला जाएगा ताकि वह विद्यार्थी के विकास में सहयोगी हो सके। सभी परीक्षाएँ (जिनमें बोर्ड परीक्षाएँ भी शामिल होंगी) मूलभूत अवधारणाओं को लेकर विद्यार्थियों की समझ और कौशलों के साथ उनकी उच्च स्तरीय क्षमताओं की जाँच करेंगी।'

क्या यह सुधार बड़े स्तर पर कारगर सिद्ध होगा? मेरा अपना नज़रिया है कि आज के वक्त में तो यह कारगर नहीं होगा, हालाँकि, हम *एकलव्य* के लोग परीक्षा के मौजूदा रूप को बदलने के लिए बरसों से माँग कर रहे हैं। हमने ऐसा कर सकने की सम्भावनाओं का सफलतापूर्वक प्रदर्शन भी किया है। हमने सरकारी शिक्षा बोर्डों के साथ विज्ञान व सामाजिक विज्ञान के विषयों और प्राथमिक कक्षाओं में ओपन बुक परीक्षाएँ आयोजित की थीं। विज्ञान, यानी होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम (एच.एस.टी.पी.) के मामले में तो इस नमूने में लगभग हज़ार स्कूल शामिल थे। इन कार्यक्रमों और बोर्ड परीक्षाओं में दो दशकों से भी ज़्यादा समय तक वैकल्पिक परीक्षा प्रणालियों का उपयोग किया गया। लेकिन फिर भी आज इन प्रयोगों की कोई भी संस्थागत स्मृतियाँ मौजूद नहीं हैं। शिक्षा बिरादरी ऐसी वैकल्पिक परीक्षा प्रणाली को तैयार करने, उसका संचालन करने और उसका मूल्यांकन करने में शामिल रही है परन्तु इन शिक्षकों की सलाह लेने का कोई प्रयास तक नहीं करती।

बदलाव में रोड़े

डीएनईपी के इतने जायज़ सुझावों को लागू क्यों नहीं किया जाएगा, इसके कारण मुख्यतः दो तरह के हैं। एक *ढाँचागत और* दूसरे *सामाजिक*।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन (सी.सी.ई.) प्रक्रिया के हालिया अनुभव को ही लें। सी.सी.ई. की मूल सोच को पूरी तरह अनदेखा करते हुए इसे व्यापक और विस्तृत प्रारूपों में लागू किया गया। इसकी वजह से शिक्षकों की बहुत ही नकारात्मक प्रतिक्रियाएँ सामने आईं। सीसीई को ऐसी बुराई बना दिया गया जिससे छुटकारा पाना ज़रूरी था। मुझे लग रहा है कि बोर्ड परीक्षाओं के खाके में सुझाए गए बदलावों के साथ भी ऐसा ही कुछ होने जा रहा है। अगर इसी तरह के संस्थागत पूर्वाग्रह और आदेशों के साथ इस नए खाके को विकृत रूप में लागू किया गया तो ये उल्टे पैर गिरेगा। रटकर पास की जाने वाली परीक्षाएँ फिर से बहाल हो जाएँगी।

दूसरा कारण जिसकी वजह से यह असफल होगा, वह है इन दो संस्थाओं, यानी राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं

प्रशिक्षण परिषद (एन.सी.ई.आर.टी.) तथा केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सी.बी.एस.ई.) के बीच का फासला। परीक्षाओं का खाका तैयार करने का काम और शिक्षकों को इस नए नज़रिए के हिसाब से प्रशिक्षित करने का काम एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा किया जाना चाहिए। लेकिन वर्तमान में एन.सी.ई.आर.टी. इसे अपनी भूमिका नहीं मानती। उनका कहना है कि यह उनका कार्यक्षेत्र नहीं है। वैकल्पिक आकलन व्यवस्थाओं के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित करने की प्रक्रिया से इस तरह का अलगाव रखने से एन.सी.ई.आर.टी. अलग-थलग रह जाती है और उसके पास कोई कार्यकारी भूमिका नहीं रहती।

दूसरी तरफ, सी.बी.एस.ई. वर्तमान स्थिति का अनुसरण करने के लिए मजबूर हो जाती है और उससे अपेक्षा की जाती है कि वह पूरी तरह से चीज़ों के क्रियान्वयन पर ध्यान केन्द्रित करे। तो सी.बी.एस.ई. अपनी पूरी ऊर्जा निष्पक्ष और छेड़छाड़ से मुक्त देशव्यापी परीक्षा कराने में, विवादों से खुद को बचाने के लिए स्मरण पर आधारित आदर्श जवाबों की मदद से विद्यार्थियों को नम्बर देने में, तथा अदालतों के आदेशों के मुताबिक चलते हुए निरन्तर खुद को दुरुस्त करने में लगा देती है। सीखने के लिए आकलन को समझने के लिए उसका एन.सी.ई.आर.टी. के साथ कोई संवाद नहीं है क्योंकि उसका कहना है कि यह उसकी ज़िम्मेदारी नहीं है। एन.सी.ई.आर.टी. और सी.बी.एस.ई. के बीच इस विभाजन की वजह से विद्यार्थियों के आकलन के लिए सुझाई गई कोई भी नई व्यवस्था के बारे में दिया गया कोई भी परामर्श सफल नहीं हो पाएगा।

ये ऐसी संस्थागत कमज़ोरियाँ हैं जो इस तरह के प्रगतिशील विचारों को शिक्षकों के सहयोग के साथ सही अर्थों में लागू नहीं होने देंगी। सतही प्रयासों का उलटा असर पड़ेगा और यथास्थिति बहाल हो जाएगी। ज़रा ध्यान दीजिए, किस तरह एक बार फिर पाँचवीं और आठवीं क्लास में बोर्ड परीक्षाएँ चालू हो गई हैं और इसके लिए शिक्षा का अधिकार (आर.टी.ई.) कानून में किस तरह संशोधन किया गया। शैक्षिक प्रशासन द्वारा बरसों से इस नज़रिए को हवा दी जा रही है, और अब यह पत्थर की लकीर की तरह बन गया है, कि बोर्ड परीक्षाएँ न होने की वजह से शिक्षक गम्भीरता से पढ़ाई नहीं कराते।

लेकिन बोर्ड परीक्षाओं के प्रति रुझान के इस प्रबल दृष्टिकोण के पीछे एक गहरा *सामाजिक सन्दर्भ* भी है। बोर्ड परीक्षाओं को आम तौर पर ऐसी संस्थाओं के रूप में देखा जाता है जो विद्यार्थियों में एक निश्चित स्तर की योग्यता होने को प्रमाणित करती हैं जिसके बाद ये विद्यार्थी कॉलेज शिक्षा या अन्य पेशों की तरफ बढ़ सकते हैं। हमारे यहाँ बोर्ड परीक्षाएँ हकीकत में प्रवेश परीक्षाएँ ही होती हैं। आज के

वक्त में स्कूल की बोर्ड परीक्षाओं का मकसद ऊँचे नम्बर हासिल करने वाले कुछ हज़ार विद्यार्थियों को योग्य करार देना है, जबकि लाखों अन्य विद्यार्थी औसत दर्जे की संस्थाओं में खुद ही अपने भविष्य को सँवारने की जद्दोजहद में लगे रहते हैं। लेकिन ज़्यादा महत्वपूर्ण और परेशान करने वाली बात यह है कि वे लोग खुद को 'असफल इन्सान' के रूप में देखने लगते हैं।

प्रवेश परीक्षाओं में बदलाव लाज़मी

अगर हम इस सामाजिक व्यवस्था को बदलना चाहते हैं तो यह अनिवार्य है कि सबसे पहले हम आई.आई.टी. और मेडिकल कॉलेजों के लिए होने वाली सबसे प्रतिष्ठित प्रवेश परीक्षाओं को बदलें। यहाँ परीक्षा के खाके में बदलाव एक सामाजिक संकेतक होगा और यह उलटी दिशा में एक चेन रिएक्शन शुरू कर देगा जिसका असर कोचिंग संस्थाओं पर भी पड़ेगा। इसे बाज़ार की प्रक्रिया का 'काउंटर चेन रिएक्शन' कहा जा सकता है।

हमें इस बात से इन्कार नहीं करना चाहिए कि कोचिंग संस्थाएँ इन बड़े प्रतिष्ठानों में दाखिले के तिलिस्म को भेदने में कामयाब होती हैं और ऐसे संस्थानों में दाखिले के लिए ज़रूरी अतिरिक्त अंक दिला पाती हैं। माँ-बाप ढेर सारा पैसा खर्च करके अपने बच्चों को कोचिंग संस्थाओं में भेजते हैं क्योंकि आखिर कुछ बच्चे तो इनके माध्यम से प्रतिष्ठित संस्थाओं में दाखिला हासिल कर ही लेते हैं। कुछ बच्चे ऐसे होते हैं जिनके लिए कोचिंग संस्थाओं के अभ्यास, नोट्स, परामर्श, दबाव और तनाव काम कर जाते हैं। वे इनकी मदद से दाखिले की सीमा-रेखा को पार कर जाते हैं जो शायद वे अपने बलबूते पर न कर पाते।

लेकिन उन ज़्यादातर विद्यार्थियों के लिए, जो अन्ततः इन प्रवेश परीक्षाओं में सफल नहीं हो पाते, कोचिंग संस्थाएँ प्रारम्भ में तो सफलता की उम्मीदें जगा ही देती हैं और उनके माँ-बाप से बहुत मोटी रकम ऐंठ लेती हैं, और इन विद्यार्थियों को अकल्पनीय तनाव से गुज़रने पर मजबूर कर देती हैं।

अधिकांश माँ-बाप इस दुविधा को समझते हैं। लेकिन चूँकि औपचारिक क्षेत्र, जो कुल श्रमबल का 10%-15% है, में नौकरी पाने के लिए यही एकमात्र रास्ता है इसलिए इस पूरी कवायद को मुश्किल अनुभव होते हुए भी एक आवश्यकता के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। प्रवेश परीक्षाओं की मौजूदा प्रणाली और कोचिंग संस्थाएँ मिलकर ऐसी क्रूर सामाजिक छलनियों के रूप में काम कर रहे हैं जिन्हें दुर्भाग्यवश आवश्यक समझा जाता है ताकि लाखों बच्चों में से कुछ हज़ार बच्चे इन प्रवेश परीक्षाओं में चुन लिए जाएँ।

इन परीक्षाओं में विज्ञान और गणित की विषयवस्तु राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा तैयार किए गए पाठ्यक्रमों से कहीं ज़्यादा ऊँचे स्तर की होती है। यही वास्तविक पाठ्यचर्या बन जाती है। ऐसे वातावरण में डीएनईपी के उदारवादी विचारों को जल्दी ही अव्यावहारिक या फिर विज्ञान व गणित पर लागू न होने योग्य घोषित कर दिया जाएगा।

पाठ्यचर्या पर डीएनईपी में कहा गया है:

'विद्यार्थियों के समग्र विकास के लिए स्कूली शिक्षा की विषयवस्तु और प्रक्रिया को नई दिशा दी जाएगी। पाठ्यचर्या के भार को कम करके महत्वपूर्ण अवधारणाओं और आवश्यक सिद्धान्तों तक सीमित किया जाएगा ताकि विद्यार्थियों के लिए गहराई से और ज़्यादा प्रयोग-आधारित ढंग से सीखने की गुंजाइश बन सके।'

और

'एक ऐसी लचीली पाठ्यचर्या - जहाँ विषयों के बीच करीकुलर, को-करीकुलर या एक्सट्रा-करीकुलर जैसा, कलाओं और विज्ञानों जैसा तथा 'व्यावसायिक' और 'अकादमिक' जैसा सख्त विभाजन नहीं होगा - विद्यार्थियों को विकल्प देगी कि वे माध्यमिक स्कूल के स्तर पर अपने विषय-क्षेत्रों में बदलाव कर सकें।'

कोचिंग उद्योग के पाठ्यक्रम और तरीके इस तरह के सुझावों को निष्प्रभावी कर देंगे, और वैकल्पिक विषयों के लचीलेपन, व्यावसायिक अनुभव तथा विज्ञान और कलाओं के बीच भेद को कम करने जैसे डीएनईपी के लक्ष्य धरे रह जाएँगे। कोचिंग स्कूल सबको एक-सा बनाने वाली बड़ी प्रबल ताकत हैं और स्कूलों में छठवीं से बारहवीं तक कोचिंग संस्कृति बिलकुल स्वीकार ली गई है। यही सामाजिक हकीकत है।

इस तरह की गहरे पैठी हुई और

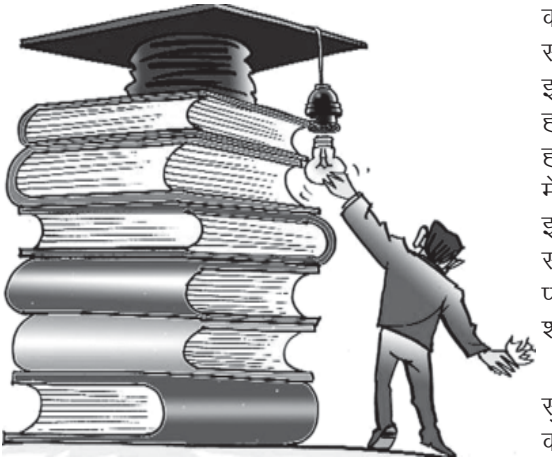

स्थापित स्थिति को बदलने के बारे में आप किस तरह सोच सकते हैं? क्या प्रतिष्ठित प्रवेश परीक्षाओं के लिए विद्यार्थियों के चयन की थोड़ी नरम एवं लचीली प्रक्रिया के बारे में सोचा जा सकता है जो निष्पक्ष हो और सबके लिए न्यायसंगत भी लगे? यह ऐसा सवाल है जिसका जवाब हमें मिल-जुलकर देना होगा।

डीएनईपी इस बात की वकालत करता है कि आगे से बोर्ड परीक्षाएँ कुछ मूलभूत सिद्धान्तों पर ध्यान केन्द्रित करें और उच्च स्तरीय कौशलों की जाँच करें।

आई.आई.टी. की परीक्षाओं में अवधारणात्मक स्पष्टता और उच्च स्तरीय कौशलों का आकलन किया जाता है। लेकिन उनमें सवालों के जवाब देने में लगने वाले समय को घटाने के लिए निरन्तर अभ्यास करने की आवश्यकता होती है और सवालों को हल करने की गति इन प्रवेश परीक्षाओं में सफलता हासिल करने का एक मापदण्ड होती है। ये परीक्षाएँ इस अर्थ में बड़ी व्यापक भी होती हैं कि इनके विषय क्षेत्रों में लगभग सभी बी.एससी. कक्षाओं के पहले सालों के पाठ्यक्रम शामिल होते हैं।

मान लीजिए, डीएनईपी के सुझाव के अनुसार, बारहवीं क्लास की विज्ञान और गणित की विषयवस्तु को घटा दिया जाए ताकि वह किसी कॉलेज पाठ्यक्रम जैसा न रहे। अब हम मान लेते हैं कि विद्यार्थियों को वर्तमान स्तर के ही सवाल मिलेंगे लेकिन इसके लिए उन्हें तुलनात्मक रूप से पाठ्यक्रम की काफी कम विषयवस्तु पर पकड़ बनानी होगी। इससे क्या होगा? बहुत सम्भावना है कि प्रवेश परीक्षाओं में सफल होने वाले विद्यार्थी शीर्ष के 15-20% होंगे जो प्रतिष्ठित संस्थाओं में उपलब्ध सीटों से कहीं बड़ी संख्या होगी।

यदि इस बड़ी संख्या में हम समग्र विकास आधारित, बहुत प्रारम्भिक अवस्था में कुछ विषयों की विशेषज्ञता हासिल करने का दबाव न डालने, अलग-अलग प्रकार की रुचियों को गुंजाइश देने, तथा विविध सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों वाले विद्यार्थी-समूह के विचार पर टिके रहते हैं, तो ऐसे समूह में बच्चों को रैंक देकर उन्हें विभाजित

करना अनुचित होगा। और चूँकि विद्यार्थियों की कोई रैंक नहीं होगी इसलिए इस स्थिति में उनकी अध्ययन-शाखा का चयन भी नहीं होना चाहिए। सभी विद्यार्थी डीएनईपी के सुझाव अनुसार 'अवधारणात्मक स्पष्टता, तार्किक सोच और विश्लेषण' के आकलन में स्वीकृत सीमा को पार कर चुकेंगे।

लॉटरी प्रक्रिया

अब आगे क्या किया जाए? चूँकि इस समूह के सभी विद्यार्थी आई.आई.टी. में पढ़ने के लिए समान रूप से समर्थ हैं इसलिए हमें अन्तिम चयन को लॉटरी प्रक्रिया से तय करना चाहिए। आप अच्छे तो हो ही और अगर आप भाग्यशाली भी हो तो आपका चयन हो जाएगा। यह सुझाव एच.एस.टी.पी. के कुछ स्रोत व्यक्तियों द्वारा कई बरस पहले दिया गया था लेकिन किसी ने इस पर ध्यान नहीं दिया। यह कोई अतार्किक सुझाव नहीं है। *यह इस समझ पर आधारित है कि प्रवेश परीक्षाओं की वैधता की अपनी सीमाएँ हैं*। इन परीक्षाओं में सफल हुए विद्यार्थियों के समूह में से और छोटे समूह का चयन करने के लिए हमें तटस्थ रहना चाहिए।

यह सुझाव आकर्षक क्यों है? इसलिए, क्योंकि सामाजिक वजहों से इसकी बदौलत सीखने के उदारवादी विचारों के महत्व के प्रति एक अलग रवैये को प्रोत्साहन मिलेगा। कोचिंग उद्योगों का आधार है विद्यार्थियों को चयन प्रक्रिया में सफल कराने के लिए स्पष्टता, गति और एक बहुत विस्तृत पाठ्यक्रम को याद रखने पर ज़ोर देना। इसके साथ ही बाज़ार द्वारा अलग-अलग विभागों का ब्राण्ड निर्माण किया जाता है और रैंकिंग दी जाती है। अगर हम चयन प्रक्रिया से इन पहलुओं को हटा दें तो कोचिंग संस्थाओं के व्यवसाय का औचित्य कुछ तो सीमित हो जाएगा। हालाँकि, यह पूरी तरह से तो नहीं जाएगा।

हम जिस व्यवस्था का सुझाव दे रहे हैं, उसमें कई विद्यार्थी कोचिंग के बिना भी सफलता के लिए तय सीमा को पार कर जाएँगे और योग्य घोषित हो जाएँगे। अगर यह हो गया तो आज के डमी स्कूलों की बजाय स्कूलों में सामान्य और समर्पित शिक्षण पर ज़ोर बढ़ेगा। यह कोई जादू की छड़ी नहीं है लेकिन बाज़ार की सपने बेचने की प्रक्रिया को चुनौती देने की सम्भावित स्थिति हो सकती है।

इस वैकल्पिक दृष्टिकोण से विद्यार्थियों को ज़बरदस्त मदद मिलेगी। कोचिंग उद्योग बहुत थोड़े-से विद्यार्थियों को सफलता दिलाता है लेकिन प्रवेश परीक्षाएँ पास न कर पाने वाले लाखों विद्यार्थियों पर यह 'असफल' होने का ठप्पा लगा देता है और उन पर ऐसा धब्बा लग जाता है जो बहुत समय तक उनका पीछा नहीं छोड़ता। हम जिस पद्धति का सुझाव दे रहे हैं, वह उन योग्य उम्मीदवारों को बहुत अधिक हतोत्साहित नहीं करेगी जो

सांयोगिक चयन प्रक्रिया में भाग्यशाली साबित नहीं होंगे। वे पूरे आत्मविश्वास के साथ अन्य रास्तों की तलाश कर सकते हैं। बहुत सारे विद्यार्थी जो बिलकुल निकट के दायरे – चयन की सीमा से ज़रा नीचे – में होंगे, वे एक और प्रयास कर सकते हैं। उन्हें अपने उन साथियों को देखकर दिलासा मिल सकता है जो उनकी तरह ही अभाग्यशाली साबित हुए होंगे। इन सब तरीकों से प्रतिष्ठित संस्थानों में चयन के इस चहेते रास्ते के इर्दगिर्द खड़ा किया गया गैर-ज़रूरी प्रचार कम हो सकता है।

ऐसी प्रक्रिया को बहुत मदद मिलेगी अगर आई.आई.टी. स्नातकोत्तर स्तर पर विद्यार्थियों और पाठ्यक्रमों की संख्या में विस्तार करे। इस तरह वे कई बुद्धिमान व प्रतिभाशाली बी.एससी. विद्यार्थियों (जो स्नातक स्तर पर आई.आई.टी. में दाखिला हासिल नहीं कर पाए) को स्नातक की पढ़ाई पूरी करने के बाद इन प्रतिष्ठित संस्थानों में दाखिला लेने का एक और मौका दे देंगे।

इससे आई.आई.टी. संस्थान खुद भी देशभर में फैले विज्ञान के ढेर सारे स्नातक कॉलेजों तक अपनी पहुँच बना सकेंगे। इससे प्रगतिशील शिक्षण को बढ़ावा मिलेगा और यह दूरदराज़ के इलाकों में स्थित कॉलेजों के लिए मार्गदर्शन का काम करेगा। और इस चेन रिएक्शन का असर राज्य शिक्षा बोर्डों पर पड़ेगा। चूँकि इस स्तर पर दाखिला लेने के इच्छुक विद्यार्थियों की संख्या स्कूलों के तुरन्त बाद दाखिले के लिए आवेदन करने वालों की संख्या की तुलना में बहुत कम होगी, इसलिए इनके परीक्षण के लिए सिर्फ कागज़-पैंसिल वाली परीक्षा लेने की बजाय कुछ व्यवहारिक विज्ञान और प्रायोगिक कार्य कराया जाना चाहिए। विज्ञान के शिक्षण पर इस प्रक्रिया का बहुत सकारात्मक और दूरगामी असर भी होगा।

लेकिन आगे जाकर अगर हम क्षेत्रीय कॉलेजों में सुधार नहीं करते हैं, प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को इन कॉलेजों की तरफ आकर्षित करने के तरीके नहीं ढूँढ़ते, उन्हें शोध सुविधाएँ नहीं देते और अन्य संस्थाओं के साथ सम्पर्क स्थापित करने के मौके नहीं देते, तो हम अपने आधार को मज़बूती नहीं दे पाएँगे। आई.आई.टी. संस्थान कुछ क्षेत्रीय कॉलेजों को परामर्श देने का काम क्यों नहीं कर सकते, और अपने कुछ पुराने विद्यार्थियों को इन कॉलेजों में फैलोशिप पर क्यों नहीं भेज सकते ताकि वे वहाँ जाकर नए विचारों, शोध और स्टार्ट-अप की वास्तविक भूख और इच्छा पैदा कर सकें? आज इन बातों का नहीं, सिर्फ दाखिला मिलने का उत्सव मनाया जाता है। अगर ये बदलाव साकार होते हैं तो इन क्षेत्रीय कॉलेजों के शिक्षकों और प्रशासकों की अपनी एक अलग दृष्टि होगी और ये संस्थाएँ सड़ने के लिए नहीं छोड़ दी जाएँगी।

सर्वप्रथम कदमः प्रवेश परीक्षाओं का खाका बदले

हम अपने पहले अवलोकन की तरफ चलते हैं कि बोर्ड परीक्षाओं के खाके में बदलाव की शुरुआत सम्भ्रान्त उच्च शिक्षा संस्थाओं के लिए होने वाली प्रवेश परीक्षाओं के खाके में बदलाव से होनी चाहिए। सबसे पहले परीक्षाओं के लिए पाठ्यक्रम की विषयवस्तु के दायरे को घटाना होगा। दूसरे, परीक्षा लेते वक्त ज़ोर अवधारणात्मक समझ, सृजनात्मकता और अभिव्यक्ति पर होना चाहिए। इसके बाद बोर्ड परीक्षाओं में बदलाव स्वाभाविक होने लगेंगे।

डीएनईपी में ऐसे आदर्शों का सुझाव दिया गया है जो विषयवस्तु को कम करेंगे और विद्यार्थियों के सीखने पर, समग्र विकास पर ज़्यादा ज़ोर देंगे और उनके साथ अमानुषिक ढंग से ज़बरदस्ती नहीं करेंगे।

क्या राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) समिति के प्रबुद्ध सदस्य आई.आई.टी. प्रॉफेसरों के उस समूह से बात करेंगे जो अपने संस्थानों की प्रवेश परीक्षा के खाके को तैयार करते हैं, ताकि समाज के व्यापक कल्याण के लिए विद्यार्थियों के आकलन की प्रणाली में बदलाव किया जा सके? राष्ट्रीय योग्यता सह प्रवेश परीक्षा (नीट) और अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) की प्रवेश परीक्षाओं के लिए ज़िम्मेदार लोग भी इसी तरह की चर्चाओं में शुमार हो सकते हैं। वे अलग लक्ष्य स्थापित करके भी प्रतिभाओं को आकर्षित करते हुए अपनी उत्कृष्ट स्थिति को बनाए रख सकते हैं। यही प्रभावी सामाजिक संकेतक है – ऐसी प्रेरक शक्ति जो परोक्ष रूप से स्कूली पाठ्यचर्या और कक्षा की संस्कृति को तय करती है। विभिन्न तरह की बोर्ड परीक्षाएँ या एन.सी.ई.आर.टी. तय नहीं करती कि क्या पढ़ाया जाना चाहिए और कैसे। अगर सबसे पहले कदम के रूप में प्रवेश की प्रक्रियाएँ बदल जाएँ तो बोर्ड परीक्षाएँ इसका अनुसरण करते हुए अपने आकलन की प्रणाली को बदल लेंगी, इसकी सम्भावना बनती है। यह आकलन के तरीके में बड़े बदलाव की राह हो सकती है जिसका स्कूलों और शिक्षकों की संस्कृति पर गहरा असर पड़ेगा।

---

* रश्मि पालीवाल को उनके सुझावों के लिए बहुत धन्यवाद।

अरविन्द सरदानाः सामाजिक विज्ञान समूह, *एकलव्य* से सम्बद्ध हैं। एन.सी.ई.आर.टी. एवं अन्य राज्यों की पाठ्यपुस्तकों की निर्माण प्रक्रियाओं से जुड़ाव रहा है।
अँग्रेज़ी से अनुवादः भरत त्रिपाठी: *एकलव्य*, भोपाल के प्रकाशन समूह के साथ कार्यरत हैं।
यह लेख *द इण्डियन फोरम* पत्रिका के अंक अगस्त 2, 2019 से साभार।

— — — — — — — —